Journal of East-West Thought
ISSN: *2168-2259 (online)*
(https://jetjournal.us/)
Volume 15, Issue 1 – 2025

Impact Factor: 7.665, UGC CARE I

राजपूताना में अफीम खेती का इतिहास

पूनम चौधरी

शोधार्थी (इतिहास)

poonamchoudharyy214@gmail.com

महाराजा गंगा सिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज.)

शोध सारांश

राजस्थान में 15वीं शताब्दी में पहली बार अफीम अरब देशों से आयी। दोआर्ते बारबोसा ने 16वीं शताब्दी में अफीम की उपज तथा उसके हकीमी उपयोग के बारे में उल्लेख किया है। सबसे पहले राजस्थान में अफीम की खेती मेवाड़ राज्य से प्रारंभ हुई, जो स्थानीय उपभोग के लिए की जाती थी। 17वीं शताब्दी में संपूर्ण राजस्थान में राजाओं, जागीरदारों एवं सामंतों के द्वारा अफीम का सेवन कुसुम रिवाज के रूप में किया जाने लगा। चूंकि राजपूत अफीम को नशीले पदार्थ के रूप में बहुत पसंद करते थे और इसलिए राजस्थान की सभी रियासतों में इसकी बहुत मांग थी। 'चोपान्यो अमल को' हमें 18वीं शताब्दी के दौरान राजस्थान में अफीम की खेती, कराधान, व्यापार और खपत के बारे में विस्तृत जानकारी देता है।

स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए राजस्थान के विभिन्न हिस्सों में विशेष रूप से कोटा, टोंक और मेवाड़ आदि में अफीम की खेती की जाती थी। कोटा में काली मिट्टी पोस्त की वृद्धि के लिए उपयुक्त थी। मेवाड़ में भी कंथल, जिसमें प्रतापगढ़ देओल, यानी माही नदी से सटे क्षेत्र में अफीम की खेती बड़े पैमाने पर की जाती थी।

बीज शब्द – अफीम की खेती, राजस्थान, जलवायु, धरातलीय विशेषता, कुसुम रिवाज।

प्रस्तावना –

राजस्थान को राजाओं की भूमि और रजवाड़ों की धरती कहा जाता है। राजस्थान भारत के उत्तर – पश्चिम में बसा हुआ राज्य है, जो क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य है।[1] इसके उत्तर में पंजाब, उत्तर–पूर्व में हरियाणा व उत्तर प्रदेश, दक्षिण–पूर्व में मध्यप्रदेश और दक्षिण–पश्चिम में गुजरात स्थित है। यह उत्तरी अक्षांश 23°03′ और 30°12′ और पूर्वी देशांतर 63°30′ और 78°17′ के बीच स्थित है।[2]

12 वीं सदी तक राजस्थान के अधिकांश भाग पर गुर्जरों का राज्य रहा है। गुजरात व राजस्थान का अधिकांश भाग उस समय गुर्जरात्र के नाम से जाना जाता था। बाद में ब्रिटिश काल में यह

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 15, Issue 1 March 2025
Impact Factor: 7.665, UGC CARE I

राजपूताना कहलाने लगा। एकीकरण से पूर्व राजस्थान में 19 रियासतें, तीन ठिकाने (चीफशिप) और अजमेर–मेरवाड़ा का केंद्र शासित क्षेत्र सम्मिलित थे।[3]

मुगल काल के समय अकबर ने अजमेर को राजपूताना की केंद्रीय राजधानी बनाया था। उस काल में मेवाड़, मारवाड़ और आमेर तीन बड़े राज्य थे। इसके अलावा बीकानेर, जैसलमेर, कोटा, बूंदी और सिरोही की रियासतें भी महत्वपूर्ण थी। परन्तु इन रियासतों का अलग से कोई अस्तित्व नहीं था। हालांकि मुगल बादशाह राजपूत सरदारों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करते थे परंतु कभी–कभी स्थितियाँ विपरीत होने पर मुगल बादशाह को हस्तक्षेप करना पड़ता था।[4]

राजस्थान प्रारंभिक काल से ही कृषि प्रधान राज्य रहा है। इसकी कुल आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा कृषि और कृषि आधारित उद्योगों पर निर्भर करता है और यहां कृषि की निर्भरता वर्षा पर आधारित है।

राजस्थान एक विशाल राज्य है, अतः यहां धरातलीय विशेषताओं का होना स्वाभाविक ही है। राज्य में पठारी प्रदेश, पर्वतीय क्षेत्र, मैदानी और मरुस्थलीय प्रदेशों का विस्तार है। इन भौगोलिक तत्वों के आधार पर राजस्थान की जलवायु, मृदा तथा उपजाऊपन में काफी अंतर देखने को मिलता है, जिसका कृषि उत्पादन पर काफी प्रभाव पड़ता है।

राजस्थान की अरावली पर्वतमाला के पश्चिम की ओर विशाल मरुस्थल स्थित है, जिसे थार का मरुस्थल कहते हैं। इसके अंतर्गत राजस्थान के उत्तर और उत्तर–पश्चिमी हिस्से शामिल थे। यहां पर बारिश बहुत कम होती थी, पानी भी सतह से काफी नीचे था और कुओं के माध्यम से कृषि करना एक बहुत बड़ी समस्या थी। इसलिए यहां सामान्यतः शरद कालीन फसल अर्थात खरीफ उगाई जाती थी, जिसे स्यालू कहा जाता था।[5]

जबकी राजस्थान के दक्षिण–पूर्वी भाग की स्थितियाँ बिलकुल अलग थी। यह क्षेत्र चंबल, बनास, कालीसिंध और पार्वती जैसी नदियों से सिंचित था। बारिश भी बहुत होती थी। इसलिए यहां दोनों फसलों अर्थात खरीफ या स्यालू और रबी या उन्यालू की कृषि जाती थी। खरीफ की फसल में मुख्य रूप से बाजरा, ज्वार, मक्का, कपास, तिल, मूंग और मोठ शामिल थे, जबकि रबी की फसल में गेहूं, चना, जौ, अलसी, चावल, गन्ना और खसखस के पौधे शामिल थे।[6]

इस क्षेत्र में फसलों की बहुलता कृषि की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। बाजे ताल्के और अरहसत्ता से खरीफ और रबी की फसलों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। राजस्थान में अफीम की खेती के बारे में जानकारी प्रदान करने में अरहसत्ता का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

जब मराठों और पिंडारियों का खतरा समाप्त हाने से अफीम के मुक्त व्यापार को प्रोत्साहन मिला। इस कारण बाजार में अफीम की कीमतें बढ़ने लगी और बढ़ती अफीम कीमतों ने किसानों को

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 15, Issue 1 March 2025
Impact Factor: 7.665, UGC CARE I

अफीम की खेती करने के लिए अत्यधिक प्रोत्साहित किया। साथ ही राजस्थान और मालवा के व्यापारियों और साहूकारों ने भी बड़ी मात्रा में अफीम व्यापार में अपनी पूंजी को निवेश किया। इस तरह अफीम की खेती के विस्तार में बड़े पैमाने पर योगदान दिया गया। अफीम की खेती में विभिन्न जातियों के लोग शामिल थे, जैसे – कुनबी, जाट, बनिया। इनमें कुनबी सबसे कुशल थे जिन्होंने अफीम उगाने में विशेषज्ञता हासिल कर ली थी।[7]

राजस्थान में राजपूतों के बीच मेहमानों का स्वागत अमल या अफीम देकर करने की सामाजिक प्रथा थी। इसलिए राजस्थान की सभी रियासतों में इसकी बहुत मांग थी।[8] यहां राजाओं, जागीरदारों एवं सामंतों के द्वारा अफीम का सेवन कुसुम रिवाज के रूप में किया जाता था।[9] 'चोपान्यो अमल को' हमें 18वीं शताब्दी के दौरान राजस्थान में अफीम की खेती, कराधान, व्यापार और खपत के बारे में विस्तृत जानकारी देता है।[10]

अतः स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए राजस्थान के विभिन्न हिस्सों में विशेष रूप से कोटा, टोंक और मेवाड़ आदि में अफीम की खेती की जाती थी। कोटा में काली मिट्टी पोस्त की वृद्धि के लिए उपयुक्त थी। मेवाड़ में भी कंथल, जिसमें प्रतापगढ़ देओल, यानी माही नदी से सटे क्षेत्र में अफीम की खेती बड़े पैमाने पर की जाती थी।[11]

जेम्स टॉड का उल्लेख है कि 'अफीम की संस्कृति पहले दोआब या चंबल और शिप्रा नदी के बीच के मार्ग तक सीमित थी, लेकिन यद्यपि अफीम के विकास की परंपरा लंबे समय से एकमात्र स्थान पर नहीं रही, यह न केवल पूरे मालवा में, बल्कि राजपुताना के विभिन्न हिस्सों, विशेष रूप से मेवाड़ और हाड़ौती में भी फैल गई।[12]

खेती की प्रक्रिया

अफीम समशीतोष्ण जलवायु की फसल है, परन्तु अर्द्धउष्ण जलवायु क्षेत्रों में शरद ऋतु में उगाई जाने वाली फसल है। हल्की वर्षा एवं कोहरे वाली रातों के मौसम इसके अच्छी बढ़वार के लिए बहुत उपयोगी है। पुष्पावस्था में वर्षा होने की स्थिति में बढ़ोतरी कम होने के साथ ही अफीम का उत्पादन घट जाता है तथा गुणवत्ता में भी कमी हो जाती है। अफीम के पौधों में डोडों पर चीरा लगाते समय यदि तेज व गर्म हवा चले तो पौधे सूख जाते हैं तथा अफीम का स्त्राव कम हो जाता है। चीरा लगाते समय वर्षा हो जाये तो उत्पादन पर भी विपरीत असर पड़ता है। इसके पौधों को शुरुआत में अंकुरित होने के लिए 20–25 डिग्री के आसपास तापमान की आवश्यकता होती है। जबकि पौधे पर फलों की पकाई के वक्त 25 डिग्री के आसपास का तापमान उपयुक्त होता है। लेकिन सर्दियों में पड़ने वाला पाला और अधिक तेज सर्दी इसकी पैदावार को नुकसान पहुँचाती है।[13]

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 15, Issue 1 March 2025
Impact Factor: 7.665, UGC CARE I

अफीम की खेती मुख्यतः रबी में अक्टूबर–नवम्बर से फरवरी–मार्च माह के मध्य में की जाती है। अतः अफीम की अधिक पैदावार लेने के लिये बुवाई का उपयुक्त समय अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक होता है। इसकी बुवाई देरी से करने पर पौधों की बढ़वार कम होती है तथा फरवरी के अंत में तापमान में वृद्धि के कारण डोडे छोटे रह जाते हैं, जिससे अफीम का स्त्राव कम होता है एवं उत्पादन में भारी कमी आ जाती है।[14]

भारत में भांग की फसलों को इकट्ठा करने के बाद खेत में पानी भरा जाता था और जब यह पर्याप्त रूप से संतृप्त हो जाता था, तब खेत को जोता जाता था। बाद में प्रचुर मात्रा में गोबर की खाद डाली जाती थी। फिर जमीन को कम से कम छह या सात बार जोता जाता था। इससे मिट्टी के ढ़ेर टूट कर समतल हो जाते थे। फिर भूमि को क्यारियों में विभाजित किया गया, और सिंचाई की सुविधा के लिए छोटे–छोटे तटबंध बनाए गए। फिर बीज फेंके गए और इसके बाद सातवें दिन फिर से संतृप्ति के लिए दोहराया गया। सामान्यतः सातवें या नौवें दिन और कभी–कभी ग्यारहवें दिन तक पौधा उग उग जाता था। पच्चीसवें दिन जब उस में कुछ पत्तियाँ निकलीं, और मुरझाई हुई लगने लगी, तब फिर इसे सींचा गया। जैसे ही नमी सूख गई, महिलाओं और बच्चों को पौधों को पतला करने के लिए खेतों में लगा दिया गया, जिससे वे लगभग आठ इंच अलग हो गए, और उनके चारों ओर की जमीन को लोहे के छरपलों से खोद दिया गया। इस अवस्था में पौधा लगभग तीन इंच ऊँचा था। एक महीने बाद इसे मध्यम रूप से पानी पिलाया गया, और जब सूख गया, तो जमीन को फिर से खोदा गया। पानी लगभग दस दिन और दिया गया, जिसके दो दिन बाद एक फूल इधर–उधर दिखाई दिया। इसे आम तौर पर एक और पानी देने के संकेत के रूप में माना जाता था, जिसके बाद चौबीस या छत्तीस घंटे में सभी फूल अपनी कोशिकाओं को फोड़ लेते हैं। जब लगभग आधी पंखुड़ियां गिर जाती थी, तो पौधों को जमीन को नम करने के लिए पर्याप्त रूप से सिंचित किया जाता था और जल्द ही बाकी फूल भी गिर जाते थे। थोड़े समय में, जब शायद ही कोई फूल रह जाता था, एक सफेद पाउडर कैप्सूल के बाहर इकट्ठा हो जाता था, जो लैंसेट के तत्काल आवेदन के लिए संकेत था।[15]

बाद में क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित किया गया, और उनमें से एक में चीरा लगाने का काम शुरू किया गया। काटने वाले यंत्र में नाजुक बिंदुओं के साथ तीन नुकीले ब्लेड होते थे, जिसके चारों ओर सूती धागे को बांधा जाता था ताकि चीरा बहुत गहरा ना लगे। चीरे को नीचे से ऊपर की ओर बनाया जाता था और बाहर निकलने वाला दूधिया रस बाहर की ओर ही जमा हो जाता था। प्रत्येक पौधे को तीन बार छेदा गया, लगातार तीन दिन, दोपहर होते ही कार्य शुरू हो गया। ठंडी सुबह में, जब यह तेजी से जम जाता है, तो एक खुरचनी के साथ जमावट को हटा दिया जाता है। चौथी सुबह प्रत्येक पौधे को एक बार फिर छेदा गया, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि कोई रस रह तो नहीं गया। सुबह इस अर्क को अलसी के तेल के एक बर्तन में डुबोया गया, ताकि इसे सूखने से रोका जा सके। सारा

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: 2168-2259 (online)
(https://jetjournal.us/)
Volume 15, Issue 1 March 2025
Impact Factor: 7.665, UGC CARE I

रस इकठ्ठा होने से बीज ही रह गया। इसलिए कैप्सूल को तोड़ दिया गया और ढेर तक ले जाया गया, जहां वे जमीन पर फैले हुए थे। उन पर थोडा सा जल छिड़का जाता था और उन्हें वस्त्र से ढक दिया जाता था। फिर उन्हें तेल वालों को दे दिया जाता था और बाकी को जला दिया जाता था, ताकि पशु उन्हें खा ना जाए, क्योंकि इस स्थिति में वे जहरीले थे। मेवाड़ में खसखस के तेल का उपयोग चिराग में किया जाता था।[16]

निष्कर्ष –

सबसे पहले राजस्थान में अफीम की खेती मेवाड़ राज्य से प्रारंभ हुई, जो स्थानीय उपभोग के लिए की जाती थी। 17वीं शताब्दी में संपूर्ण राजस्थान में राजाओं, जागीरदारों एवं सामंतों के द्वारा अफीम का सेवन कुसुम रिवाज के रूप में किया जाने लगा। चूंकि राजपूत अफीम को नशीले पदार्थ के रूप में बहुत पसंद करते थे और इसलिए राजस्थान की सभी रियासतों में इसकी बहुत मांग थी। अतः स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए राजस्थान के विभिन्न हिस्सों में विशेष रूप से कोटा, टोंक और मेवाड़ आदि में अफीम की खेती की जाती थी। कोटा में काली मिट्टी पोस्त की वृद्धि के लिए उपयुक्त थी। मेवाड़ में भी कंथल, जिसमें प्रतापगढ़ देओल, यानी माही नदी से सटे क्षेत्र में अफीम की खेती बड़े पैमाने पर की जाती थी।

पाद टिप्पणी

1. जैन डॉ. हुकुम चंद, डॉ. नारायण माली, राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति इन्साइक्लोपीडिया, 2017
2. Chouhan, T.S., Encyclopaedia of Rajasthan (Jodhpur, 1996), Vol.I, p.1.
3. पूर्वोक्त संदर्भ।
4. Gupta B.L., Trade and Commerce in Rajasthan During The 18th Century (Jaipur, 1987), p.1.
5. गुप्ता बी.एल., पूर्वोक्त संदर्भ, पृष्ठ 43.
6. गुप्ता बी.एल., पूर्वोक्त संदर्भ, पृष्ठ 44.
7. Tod James, Annals and Antiquities of Rajasthan or the Central and Western Rajpoot States of India (London,1920), Vol. III, p.1666.
8. गुप्ता बी.एल., पूर्वोक्त संदर्भ, पृष्ठ 69.
9. जैसलमेर रिकोर्डः महकमा खास, फाइल संख्या 37, भाग 1, बस्ता संख्या 6, वर्ष 1893, राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर.
10. भाटी, हुकम सिंह, चोपान्यो अमल को, पात्र सांख्य 46, विक्रम संवत 1772, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर.

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved

Journal of East-West Thought
ISSN: *2168-2259 (online)*
(https://jetjournal.us/)
Volume 15, Issue 1 March 2025
Impact Factor: 7.665, UGC CARE I

11. गुप्ता बी.एल., पूर्वोक्त संदर्भ, पृष्ठ 47.

12. टॉड, जेम्स, पूर्वोक्त संदर्भ, वॉल्यूम 3, पृष्ठ 1666.

13. धाकड़, देवीलाल, शिवम मौर्य और गोवर्धन लाल कुमार, राजस्थान की जलवायु में अफीम की उन्नत खेती कैसे करें, राजस्थान खेती प्रताप, नवंबर 2021, पृष्ठ 16.

14. पूर्वोक्त संदर्भ, पृष्ठ 17.

15. टॉड, जेम्स, पूर्वोक्त संदर्भ, वॉल्यूम 3, पृष्ठ 1668–1669.

16. टॉड, जेम्स, पूर्वोक्त संदर्भ, वॉल्यूम 3, पृष्ठ 1669.

Copyright © | JET Network, All Rights Reserved